श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

गजेन्द्र मोक्ष(अर्थ)

श्री शुक उवाच

एवं(वँ) व्यवसितो बुद्ध्या, समाधाय मनो हृदि |

जजाप परमं(ञ्) जाप्यं(म्), प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम्।। (1)

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! अपनी बुद्धिसे ऐसा निश्चय करके गजेन्द्रने अपने मनको हृदयमें एकाग्र किया और फिर पूर्वजन्ममें सीखे हुए श्रेष्ठ स्तोत्रके जपद्वारा भगवान्‌की स्तुति करने लगा॥ १ ॥

गजेन्द्र उवाच

ॐ नमो भगवते तस्मै, यत एतच्चिदात्मकम्।

पुरुषायादिबीजाय, परेशायाभिधीमहि।। (2)

गजेन्द्रने कहा—जो जगत्के मूल कारण हैं और सबके हृदयमें पुरुषके रूपमें विराजमान हैं एवं समस्त जगत्के एकमात्र स्वामी हैं, जिनके कारण इस संसारमें चेतनताका विस्तार होता है—उन भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ, प्रेमसे उनका ध्यान करता हूँ ॥ २ ॥

यस्मिन्निदं(यँ) यतश्चेदं(यँ), येनेदं(यँ) य इदं(म्) स्वयम्।

योऽस्मात् परस्माच्च परस्-तं(म्) प्रपद्ये स्वयम्भुवम्।। (3)

यह संसार उन्हींमें स्थित है, उन्हींकी सत्तासे प्रतीत हो रहा है, वे ही इसमें व्याप्त हो रहे हैं और स्वयं वे ही इसके रूपमें प्रकट हो रहे हैं। यह सब होनेपर भी वे इस संसार और इसके कारण—प्रकृतिसे सर्वथा परे हैं। उन स्वयं- प्रकाश, स्वयंसिद्ध सत्तात्मक भगवान्‌की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥ ३ ॥

यः(स्) स्वात्मनीदं(न्) निजमाययार्पितं(ङ्),

क्वचिद् विभातं(ङ्) क्व च तत् तिरोहितम्।

अविद्धदृक् साक्ष्युभयं(न्) तदीक्षते,

स आत्ममूलोऽवतु मां(म्) परात्परः।। (4)

यह विश्व-प्रपञ्च उन्हींकी मायासे उनमें अध्यस्त है। यह कभी प्रतीत होता है, तो कभी नहीं। परंतु उनकी दृष्टि ज्यों-की- त्यों—एक-सी रहती है। वे इसके साक्षी हैं और उन दोनोंको ही देखते रहते हैं। वे सबके मूल हैं और अपने मूल भी वही हैं। कोई दूसरा उनका कारण नहीं है। वे ही समस्त कार्य और कारणोंसे अतीत प्रभु मेरी रक्षा करें ॥ ४ ॥

कालेन पञ्चत्वमितेषु कृत्स्नशो,

लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु।

तमस्तदाऽऽसीद् गहनं(ङ्) गभीरं(यँ),

यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः।। (5)

प्रलयके समय लोक, लोकपाल और इन सबके कारण सम्पूर्ण- रूपसे नष्ट हो जाते हैं। उस समय केवल अत्यन्त घना और गहरा अन्धकार-ही-अन्धकार रहता है। परंतु अनन्त परमात्मा उससे सर्वथा परे विराजमान रहते हैं। वे ही प्रभु मेरी रक्षा करें ॥ ५ ॥

न यस्य देवा ऋषयः(फ्) पदं(वँ) विदुर्-

जन्तुः(फ्) पुनः(ख्) कोऽर्हति गन्तुमीरितुम्।

यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो,

दुरत्ययानुक्रमणः(स्) स मावतु।। (6)

उनकी लीलाओंका रहस्य जानना बहुत ही कठिन है। वे नटकी भाँति अनेकों वेष धारण करते हैं। उनके वास्तविक स्वरूपको न तो देवता जानते हैं और न ऋषि ही; फिर दूसरा ऐसा कौन प्राणी है, जो वहाँतक जा सके और उसका वर्णन कर सके ? वे प्रभु मेरी रक्षा करें ॥ ६ ॥

दिदृक्षवो यस्य पदं(म्) सुमंगलं(म्),

विमुक्तसङ्गा मुनयः(स्) सुसाधवः।

चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं(वँ) वने,

भूतात्मभूताः(स्) सुहृदः(स्) स मे गतिः।। (7)

जिनके परम मङ्गलमय स्वरूपका दर्शन करनेके लिये महात्मागण संसारकी समस्त आसक्तियोंका परित्याग कर देते हैं और वनमें जाकर अखण्डभावसे ब्रह्मचर्य आदि अलौकिक व्रतोंका पालन करते हैं तथा अपने आत्माको सबके हृदयमें विराजमान देखकर स्वाभाविक ही सबकी भलाई करते हैं— वे ही मुनियोंके सर्वस्व भगवान् मेरे सहायक हैं; वे ही मेरी गति हैं ॥७ ॥

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा,

न नामरूपे गुणदोष एव वा।

तथापि लोकाप्ययसंभवाय यः(स्),

स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति।। (8)

न उनके जन्म-कर्म हैं और न नाम-रूप; फिर उनके सम्बन्धमें गुण और दोषकी तो कल्पना ही कैसे की जा सकती है ? फिर भी विश्वकी सृष्टि और संहार करनेके लिये समय-समयपर वे उन्हें अपनी मायासे स्वीकार करते हैं ॥ ८ ॥

तस्मै नमः(फ्) परेशाय, ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये।

अरूपायोरुरूपाय, नम आश्चर्यकर्मणे।। (9)

उन्हीं अनन्त शक्तिमान् सर्वैश्वर्यमय परब्रह्म परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। वे अरूप होनेपर भी बहुरूप हैं। उनके कर्म अत्यन्त आश्चर्यमय हैं। मैं उनके चरणोंमें नमस्कार करता हूँ ॥ ९ ॥

नम आत्मप्रदीपाय, साक्षिणे परमात्मने।

नमो गिरां(वँ) विदूराय, मनसश्चेतसामपि।। (10)

स्वयंप्रकाश, सबके साक्षी परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। जो मन, वाणी और चित्तसे अत्यन्त दूर हैं—उन परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १० ॥

सत्त्वेन प्रतिलभ्याय, नैष्कर्म्येण विपश्चिता।

नमः(ख्) कैवल्यनाथाय, निर्वाणसुखसं(वँ)विदे।। (11)

विवेकी पुरुष कर्म-संन्यास अथवा कर्म-समर्पणके द्वारा अपना अन्तःकरण शुद्ध करके जिन्हें प्राप्त करते हैं तथा जो स्वयं तो नित्यमुक्त, परमानन्द एवं ज्ञानस्वरूप हैं ही, दूसरोंको कैवल्य-मुक्ति देनेकी सामर्थ्य भी केवल उन्हींमें है—उन प्रभुको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ११ ॥

नमः(श्) शान्ताय घोराय, मूढाय गुणधर्मिणे ।

निर्विशेषाय साम्याय, नमो ज्ञानघनाय च।। (12)

जो सत्त्व, रज, तम— इन तीन गुणोंका धर्म स्वीकार करके क्रमशः शान्त, घोर और मूढ़ अवस्था भी धारण करते हैं, उन भेदरहित समभावसे स्थित एवं ज्ञानघन प्रभुको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ १२ ॥

क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं(म्), सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे।

पुरुषायात्ममूलाय, मूलप्रकृतये नमः॥ (13)

आप सबके स्वामी, समस्त क्षेत्रोंके एकमात्र ज्ञाता एवं सर्वसाक्षी हैं, आपको मैं नमस्कार करता हूँ। आप स्वयं ही अपने कारण हैं। पुरुष और मूल प्रकृतिके रूपमें भी आप ही हैं। आपको मेरा बार-बार नमस्कार ॥ १३ ॥

सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे, सर्वप्रत्ययहेतवे।

असताच्छाययोक्ताय, सदाभासाय ते नमः॥ (14)

आप समस्त इन्द्रिय और उनके विषयोंके द्रष्टा हैं, समस्त प्रतीतियोंके आधार हैं। अहंकार आदि छायारूप असत् वस्तुओंके द्वारा आपका ही अस्तित्व प्रकट होता है। समस्त वस्तुओंकी सत्ताके रूपमें भी केवल आप ही भास रहे हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ १४ ॥

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय,

निष्कारणायाद्भुतकारणाय।

सर्वागमाम्नायमहार्णवाय,

नमोऽपवर्गाय परायणाय॥ (15)

आप सबके मूल कारण हैं, आपका कोई कारण नहीं है। तथा कारण होनेपर भी आपमें विकार या परिणाम नहीं होता, इसलिये आप अनोखे कारण हैं। आपको मेरा बार-बार नमस्कार ! जैसे समस्त नदी-झरने आदिका परम आश्रय समुद्र है, वैसे ही आप समस्त वेद और शास्त्रोंके परम तात्पर्य हैं। आप मोक्षस्वरूप हैं और समस्त संत आपकी ही शरण ग्रहण करते हैं; अत: आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १५ ॥

गुणारणिच्छन्नचिद्वह्निपाय,

तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय।

नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागम-

स्वयं(म्)प्रकाशाय नमस्करोमि॥ (16)

जैसे यज्ञके काष्ठ अरणिमें अग्नि गुप्त रहती है, वैसे ही आपने अपने ज्ञानको गुणोंकी मायासे ढक रखा है। गुणोंमें क्षोभ होनेपर उनके द्वारा विविध प्रकारकी सृष्टि- रचनाका आप संकल्प करते हैं। जो लोग कर्म-संन्यास अथवा कर्म-समर्पणके द्वारा आत्मतत्त्वकी भावना करके वेद-शास्त्रोंसे ऊपर उठ जाते हैं, उनके आत्माके रूपमें आप स्वयं ही प्रकाशित हो जाते हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १६ ॥

मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय,

मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय।

स्वां(म्)शेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत-

प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते॥ (17)

जैसे कोई दयालु पुरुष फंदेमें पड़े हुए पशुका बन्धन काट दे, वैसे ही आप मेरे-जैसे शरणागतोंकी फाँसी काट देते हैं। आप नित्यमुक्त हैं, परम करुणामय हैं और भक्तोंका कल्याण करनेमें आप कभी आलस्य नहीं करते। आपके चरणोंमें मेरा नमस्कार है। समस्त प्राणियोंके हृदयमें अपने

अंशके द्वारा अन्तरात्माके रूपमें आप उपलब्ध होते रहते हैं। आप सर्वैश्वर्यपूर्ण एवं अनन्त हैं। आपको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १७ ॥

आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तैर्-

दुष्प्रापणाय गुणसङ्गविवर्जिताय।

मुक्तात्मभिः(स्) स्वहृदये परिभाविताय,

ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय॥ (18)

जो लोग शरीर, पुत्र, गुरुजन, गृह, सम्पत्ति और स्वजनोंमें आसक्त हैं—उन्हें आपकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है। क्योंकि आप स्वयं गुणोंकी आसक्तिसे रहित हैं। जीवन्मुक्त पुरुष अपने हृदयमें आपका निरन्तर चिन्तन करते रहते हैं। उन सर्वैश्वर्यपूर्ण ज्ञानस्वरूप भगवान्‌को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १८ ॥

यं(न्) धर्मकामार्थविमुक्तिकामा,

भजन्त इष्टां(ङ्) गतिमाप्नुवन्ति।

किं(न्) त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं(ङ्),

करोतु मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम्॥ (19)

धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी कामनासे मनुष्य उन्हींका भजन करके अपनी अभीष्ट वस्तु प्राप्त कर लेते हैं। इतना ही नहीं, वे उनको सभी प्रकारका सुख देते हैं और अपने ही जैसा अविनाशी पार्षद शरीर भी देते हैं। वे ही परम दयालु प्रभु मेरा उद्धार करें ॥ १९ ॥

एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं(वँ),

वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः।

अत्यद्भुतं(न्) तच्चरितं(म्) सुमंगलं(ङ्),

गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः॥ (20)

जिनके अनन्य प्रेमी भक्तजन उन्हींकी शरणमें रहते हुए उनसे किसी भी वस्तुकी—यहाँतक कि मोक्षकी भी अभिलाषा नहीं करते, केवल उनकी परम दिव्य मङ्गलमयी लीलाओंका गान करते हुए आनन्दके समुद्रमें निमग्न रहते हैं ॥ २० ॥

तमक्षरं(म्) ब्रह्म परं(म्) परेश-

मव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम्।

अतीन्द्रियं(म्) सूक्ष्ममिवातिदूर-

मनन्तमाद्यं(म्) परिपूर्णमीडे॥ (21)

जो अविनाशी, सर्वशक्तिमान्, अव्यक्त, इन्द्रियातीत और अत्यन्त सूक्ष्म हैं; जो अत्यन्त निकट रहनेपर भी बहुत दूर जान पड़ते हैं; जो आध्यात्मिक योग अर्थात् ज्ञानयोग या भक्तियोगके द्वारा प्राप्त होते हैं उन्हीं आदिपुरुष, अनन्त एवं परिपूर्ण परब्रह्म परमात्माकी मैं स्तुति करता हूँ॥ २१ ॥

यस्य ब्रह्मादयो देवा, वेदा लोकाश्चराचराः।

नामरूपविभेदेन, फल्ग्व्या च कलया कृताः॥ (22)

यथार्चिषोऽग्नेः(स्) सवितुर्गभस्तयो,

निर्यान्ति सं(यँ)यान्त्यसकृत् स्वरोचिषः।

तथा यतोऽयं(ङ्) गुणसंप्रवाहो,

बुद्धिर्मनः(ख्) खानि शरीरसर्गाः॥ (23)

स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ्,

न स्त्री न षण्ढो न पुमान् न जन्तुः।

नायं(ङ्) गुणः(ख्) कर्म न सन्न चासन्,

निषेधशेषो जयतादशेषः॥ (24)

जिनकी अत्यन्त छोटी कलासे अनेकों नाम-रूपके भेद-भावसे युक्त ब्रह्मा आदि देवता, वेद और चराचर लोकोंकी सृष्टि हुई है, जैसे धधकती हुई आगसे लपटें और प्रकाशमान सूर्यसे उनकी किरणें बार-बार निकलती और लीन होती रहती हैं, वैसे ही जिन स्वयंप्रकाश परमात्मासे बुद्धि, मन, इन्द्रिय और शरीर—जो गुणोंके प्रवाहरूप हैं—बार-बार प्रकट होते तथा लीन हो जाते हैं, वे भगवान् न देवता हैं और न असुर। वे मनुष्य और पशु-पक्षी भी नहीं हैं। न वे स्त्री हैं, न पुरुष और न नपुंसक। वे कोई साधारण या असाधारण प्राणी भी नहीं हैं। न वे गुण हैं और न कर्म, न कार्य हैं और न तो कारण ही। सबका निषेध हो जानेपर जो कुछ बच रहता है, वही उनका स्वरूप है तथा वे ही सब कुछ हैं। वे ही परमात्मा मेरे उद्धारके लिये प्रकट हों ॥ २२—२४ ॥

जिजीविषे नाहमिहामुया कि-

मन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या।

इच्छामि कालेन न यस्य विप्लवस्-

तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम्॥ (25)

मैं जीना नहीं चाहता। यह हाथीकी योनि बाहर और भीतर—सब ओरसे अज्ञानरूप आवरणके द्वारा ढकी हुई है, इसको रखकर करना ही क्या है ? मैं तो आत्मप्रकाशको ढकनेवाले उस

अज्ञानरूप आवरणसे छूटना चाहता हूँ, जो कालक्रमसे अपने-आप नहीं छूट सकता, जो केवल भगवत्कृपा अथवा तत्त्वज्ञानके द्वारा ही नष्ट होता है ॥ २५ ॥

सोऽहं(वँ) विश्वसृजं(वँ) विश्व-मविश्वं(वँ) विश्ववेदसम्।

विश्वात्मानमजं(म्) ब्रह्म, प्रणतोऽस्मि परं(म्) पदम्॥ (26)

इसलिये मैं उन परब्रह्म परमात्माकी शरणमें हूँ जो विश्वरहित होनेपर भी विश्वके रचयिता और विश्वस्वरूप हैं—साथ ही जो विश्वकी अन्तरात्माके रूपमें विश्वरूप सामग्रीसे क्रीड़ा भी करते रहते हैं, उन अजन्मा परमपद-स्वरूप ब्रह्मको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २६ ॥

योगरन्धितकर्माणो, हृदि योगविभाविते।

योगिनो यं(म्) प्रपश्यन्ति ,योगेशं(न्) तं(न्) नतोऽस्म्यहम्॥ (27)

योगीलोग योगके द्वारा कर्म, कर्म-वासना और कर्मफलको भस्म करके अपने योगशुद्ध हृदयमें जिन योगेश्वर भगवान्‌का साक्षात्कार करते हैं—उन प्रभुको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ २७ ॥

नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेग-

शक्तित्रयायाखिलधीगुणाय।

प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तये,

कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने॥ (28)

प्रभो ! आपकी तीन शक्तियों—सत्त्व, रज और तमके रागादि वेग असह्य हैं। समस्त इन्द्रियों और मनके विषयोंके रूपमें भी आप ही प्रतीत हो रहे हैं। इसलिये जिनकी इन्द्रियाँ वशमें नहीं हैं, वे तो आपकी प्राप्तिका मार्ग भी नहीं पा सकते। आपकी शक्ति अनन्त है। आप शरणागतवत्सल हैं। आपको मैं बार-बार नमस्कार करता हूँ ॥ २८ ॥

नायं(वँ) वेद स्वमात्मानं(यँ), यच्छक्त्याहं(न्)धिया हतम्।

तं(न्) दुरत्ययमाहात्म्यं(म्), भगवन्तमितोऽस्म्यहम्॥ (29)

आपकी माया अहंबुद्धिसे आत्माका स्वरूप ढक गया है, इसीसे यह जीव अपने स्वरूपको नहीं जान पाता। आपकी महिमा अपार है। उन सर्वशक्तिमान् एवं माधुर्यनिधि भगवान्‌की मैं शरणमें हूँ ॥ २९ ॥

श्रीशुक उवाच

एवं(ङ्) गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषं(म्),

ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाभिमानाः।

नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्,

तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत्॥ (30)

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित् ! गजेन्द्रने बिना किसी भेदभावके निर्विशेषरूपसे भगवान्‌की स्तुति की थी, इसलिये भिन्न-भिन्न नाम और रूपको अपना स्वरूप माननेवाले ब्रह्मा आदि देवता उसकी रक्षा करनेके लिये नहीं आये। उस समय सर्वात्मा होनेके कारण सर्वदेवस्वरूप स्वयं भगवान् श्रीहरि प्रकट हो गये ॥ ३० ॥

तं(न्) तद्वदार्त्तमुपलभ्य जगन्निवासः(स्),

स्तोत्रं(न्) निशम्य दिविजैः(स्) सहसं(म्)स्तुवद्भिः।

छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमानश्-

चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः॥ (31)

विश्वके एकमात्र आधार भगवान्‌ने देखा कि गजेन्द्र अत्यन्त पीड़ित हो रहा है। अत: उसकी स्तुति सुनकर वेदमय गरुड़पर सवार हो चक्रधारी भगवान् बड़ी शीघ्रतासे वहाँके लिये चल पड़े, जहाँ गजेन्द्र अत्यन्त संकटमें पड़ा हुआ था। उनके साथ स्तुति करते हुए देवता भी आये ॥ ३१ ॥

सोऽन्त:(स्)सरस्युरुबलेन गृहीत आर्त्तो,

दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं(ङ्) ख उपात्तचक्रम्।

उत्क्षिप्य साम्बुजकरं(ङ्) गिरमाह कृच्छ्रान्-

नारायणाखिलगुरो भगवन् नमस्ते॥ (32)

सरोवरके भीतर बलवान् ग्राहने गजेन्द्रको पकड़ रखा था और वह अत्यन्त व्याकुल हो रहा था। जब उसने देखा कि आकाशमें गरुड़पर सवार होकर हाथमें चक्र लिये भगवान् श्रीहरि आ रहे हैं, तब अपनी सूँड़में कमलका एक सुन्दर पुष्प लेकर उसने ऊपरको उठाया और बड़े कष्टसे बोला—'नारायण ! जगद्गुरो ! भगवन् ! आपको नमस्कार है' ॥ ३२ ॥

तं(वँ) वीक्ष्य पीडितमजः(स्) सहसावतीर्य,

सग्राहमाशु सरसः(ख्) कृपयोज्जहार।

ग्राहाद् विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं(म्),

सं(म्)पश्यतां(म्) हरिरमूमुचदुस्त्रियाणाम्॥ (33)

जब भगवान्‌ने देखा कि गजेन्द्र अत्यन्त पीड़ित हो रहा है, तब वे एकबारगी गरुडक़ो छोडक़र कूद पड़े और कृपा करके गजेन्द्रके साथ ही ग्राहको भी बड़ी शीघ्रतासे सरोवरसे बाहर निकाल लाये। फिर सब देवताओंके सामने ही भगवान् श्रीहरिने चक्रसे ग्राहका मुँह फाड़ डाला और गजेन्द्रको छुड़ा लिया ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायामष्टमस्कन्धे गजेन्द्रमोक्षणे तृतीयोऽध्याय: ।।

YouTube Full video link

https://youtu.be/FP1m11QBhn0